SAMVARDHINI
PEER REVIEWED MULTILINGUAL E-RESEARCH JOURNAL
(ISSN ONLINE: - 2583-7176)
https://samvardhini.in
https://samskritpromotion.in

SAMVARDHINI: - 20/12/2023
Volume - 5
Issue - 2
(ISSN ONLINE: - 2583-7176)
https://samvardhini.in

योगक्षेम-विमर्श

लेखिका
डॉ मीरा दुबे

शोधसार: -

योगक्षेम भारतीय ज्ञान परम्परा का वह प्रबन्धन है। जिसे इन्द्रियजय, विनय और विद्या आदि उपकरणो से सुसज्जित होकर अपने कुटुंब-समाज तथा देश के प्रति,उत्तरदायित्व एवं लोक-कल्याण की भावना का विकास सुरक्षित है। योगक्षेम, 'कर्म' के उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण को परिभाषित करता है। जिसमें भारतीय परम्परा का सार प्रदर्शित होता है।

प्रस्तावना –

भारत अपने पारम्परिक ज्ञान-भण्डार के कारण ही आज मजबूती से अस्तित्व में है। भारतीय परम्परा में कर्म, कर्म का स्वरूप,कर्म के प्रकार,कर्म के सिद्धान्त और कर्म का परिणाम ही कर्त्तव्य तथा धर्म के महत्त्व को अनिवार्य बना देता है। जिसका दार्शनिक महत्त्व भी है। जिसके आधार पर दर्शन एवं धर्मशास्त्र की विशिष्ट परम्परा सुरक्षित है। 'योगक्षेम' भारतीय संस्कृति का वह सूत्र है, जो 'कर्म' के उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण को परिभाषित करता है। जिसमें भारतीय परम्परा का सार प्रदर्शित होता है। योगक्षेम को समझने के लिए इन्द्रियजय, विनय और विद्या की भूमिका अनिवार्य हो जाती है। योगक्षेम, विद्या और विनय का परिणाम है और विद्या-विनय का हेतु इंद्रियजय।

डॉ. मीरा दुबे
उपाध्यापिका (धर्मशास्त्रम्)
बरोडासंस्कृत-महाविद्यालय
महाराजा-सयाजीराव-विश्वविद्यालय
बरोडा (गुजरात)
dubey.meerabsm@msubaroda.ac.in

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय; कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः । कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः ।[1]

वैदिकपरम्परा में अध्ययन का प्रथम चरण इन्द्रियजय,द्वितीय विनय,तृतीय विद्या तथा चतुर्थ चरण योगक्षेम । योगक्षेम विद्या का सार है एवं परिणाम है । कौटिल्य कहते है कि विद्या से वही योग्य होसकता है जिसमें शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह (तर्क-वितर्क), में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते है । उसी शिष्य का शिक्षण और नियमन होना चाहिए, जिसमें **शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिविद्या विनयति नेतरम्** ।[2] आन्वीक्षकी,त्र यी और वार्ता, इन तीनों विद्याओ का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है । मनु कहते है कि

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाऽभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर् बुधाः ।। [3]

अर्थात् दण्ड सभी प्रजाओं को कर्तव्य अकर्तव्य का उपदेश देता है । दण्ड सभी की रक्षा करता है, लोगो के सोने पर भी दण्ड जागता ही रहता है,इसीलिए विवेकी दण्ड को धर्म के रूप जानते है ।

शांतिपर्व में राजधर्म को सभी धर्मों का सार कहा गया है । **सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः**[4] प्रचीनकाल से राजधर्म विश्व का सबसे प्रमुख विषय रहा है, जिसमें **आचार, व्यवहार, प्रायश्चित** आदि के सभी नियम आ जाते है । अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम और गृहस्थ आश्रम में रह रहे मनुष्यों का कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य ही योगक्षेम के चारों चरणों को सम्पन्न करने का समय है । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में विद्या का एक भाग दण्डनीति माना है, वही धर्मशास्त्रों में ये राजा के लिए दण्डशब्द प्रयोग किये गये है । आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-वृत्ति का राजा (निर्देशक) होता है, अतः स्वयं उसमें नियन्त्रण केन्द्रित होना चाहिए । इस भाव को समझने का प्रयास ही योगक्षेम की सही परिभाषा होगा । इसलिए इस वैदिक पारंपरिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का चार चरणों में अध्ययन करेगें जो निम्नलिखित है --- **इन्द्रियजय,विनय, विद्या तथा योगक्षेम** ।

इन्द्रियजय -

भारतीयवैदिक परम्परा में इन्द्रियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । सनातनी पहले अनुशासन द्वारा बच्चे को अनुशासित करने का प्रयास करते हैं फिर इन्द्रिय-ज्ञान, इन्द्रियों के विषय और उस पर नियंत्रण की शिक्षा देते हैं । इन्द्रियों का स्थान शरीर है और शरीर के जिस अवयव से ज्ञान प्राप्त होता है उसे इन्द्रिय कहते हैं, वैदिक परम्परा में 'अथ' शब्द का प्रयोग यह प्रदर्शित करता है कि जब छात्र इन्द्रिय-विषयों से परे, यथार्थ जानने की इच्छा से, अध्ययन-रत विषय का विशेष ज्ञान की चाह में प्रश्न करता है । यही अनुशासित इन्द्रियों का प्रथम चरण है । अब प्रश्न उठता है कि इन्द्रिय है क्या ? इन्द्रिय तीन प्रकार की होती है । पाँच ज्ञानेन्द्रिय,पाँच कर्मेन्द्रिय और मन । मनुस्मृति के अनुसार –

श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिका चैव पंचमी ।
पयूपसस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ।। [5] **एकादशं मनोज्ञेयम् ।** [6]

1 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.३/अ.५
2 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.२/अ.४
3 मनुस्मृति: १८/७
4 महाभारत/शांतिपर्व
5 मनुस्मृति: 90/2
6 मनुस्मृति: 92/2

अर्थात् कान, नाक, त्वचा, नेत्र, जीभ, ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय; जननेन्द्रिय, हाथ, पैर और वाणी को दशवाँ समझा गया है, ग्यारवां मन। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय अपने अपने विषयों में प्रवृत रहती हैं। इन प्रवृतियों का निरोध ही इन्द्रियजय है। मनु कहते है, कि इष्ट-अनिष्ट सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर और सूंघकर भी जो मनुष्य न हर्षित होता है, और न दुखी होता है वह ही जितेन्द्रिय होता है। **श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।**
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जीतेन्द्रियः ।। [1]

कौटिल्य के अनुसार अर्थशास्त्र में काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष ये इन्द्रियजय के शत्रु हैं। इनका त्याग ही इन्द्रियजय है। **कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः।**[2]

विनय -

काम,क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से ही मानव में मानवीयता का प्रादुर्भाव होता है, तथा मानवीय-व्यक्ति ही विनयी होता है। 'विनय' शब्द नैतिक-प्रशिक्षणयुक्त, श्रद्धा, सदाचारयुक्त, विनम्र और आज्ञाकारी अनुवर्ती अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इन्द्रियजयी या जितेन्द्रिय बनाने की इच्छुक या प्रयासरत छात्र ही विनयी होगा। कौटिल्य कहते है कि विद्या से वही योग्य होसकता है जिसमें शुश्रूषा,श्रवण,ग्रहण,धारण,विज्ञान, ऊहापोह(तर्क-वितर्क), में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते है। उसी विनयी-शिष्य का शिक्षण और नियमन होना चाहिए, जो विनयी हो।

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धि विद्या विनयति नेतरम् । [3]

छात्र का प्रथम कर्त्तव्य ही है शुश्रूषा अर्थात् सेवा भाव, यज्ञोपवीत संस्कार करने के उपरान्त बालक का गुरुकुल में प्रवेश होता है। वहाँ वह गुरु से पहले उठना, नित्यकर्म करके यज्ञ के लिए समिधा एकत्र करना, गुरुकुल की स्वच्छता का कर्त्तव्य उस वटुक का ही होता था। इसमें एक मात्र सेवा, श्रद्धा और आदर का भाव सुरक्षित रहता था। छात्र का दूसरा धर्म है श्रवण, गुरु के द्वारा दिये गये मंत्रों, आदेशों तथा उपदेशों का अर्थयुक्तश्रवण । शिक्षण में श्रवण संस्कार की प्रमुख भूमिका होती है। श्रवणसंस्कार को ग्रहण करना। ग्रहण करने के पश्चात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य बोध समझ कर उसे धारण करना । वि+ ज्ञान= विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान। विशिष्टज्ञान ही तर्क-वितर्क करने की क्षमता का प्रादुर्भाव करता है जिससे विनयी व्यक्ति के बौद्धिक क्षमता का ज्ञान होता है।

विद्या - **शास्त्रादितत्त्वज्ञानं धीः आत्मज्ञानं विद्या।**
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ।। [4]

विद्या के स्वरुप को भर्तृहरि ने बहुत सुन्दर शब्दो में लिखा है---

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।।
विद्याबन्धुजनो विदेशगमने विद्यापरा देवता ।
विद्या राजसु पुज्यते न हि धनं विद्या विहीनः पशुः।। [5]

1 मनुस्मृतिः 98/2
2 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.३/अ.५
3 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.२/अ.४
4 रघुवंश १/८८
5 नीतिशतकम्

विद्या ही मनुष्य की सुन्दरता और गुप्त धन है जो यश एवं सुख प्रदान करने वाली, गुरुओं की गुरु है। विद्या विदेश गमन में भी सदा बंधु की तरह साथ देती है, विद्या देवों में देव तथा विद्या ही राज्य में पूज्य है न की धन, विद्या विहीन मनुष्य पशु के समान असंस्कारी माना जाता है। इसीलिए कालिदास रघुवंश में कहते है कि निरंतर अभ्यास द्वारा ही ये प्रसाद स्वरूप श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह(तर्क-वितर्क) द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते है। अब प्रश्न उठता है कि विद्या है क्या ? **आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।** [1] कौटिल्य इन चारों को विद्या मानते हैं। आन्वीक्षकी अर्थात् संख्य-योग और लोकायत दर्शन आन्वीक्षकी, सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी । साम,ऋक् तथा यजु इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है। त्रयी में धर्म-अधर्म के अर्थ-अनर्थ का ज्ञान।

वार्ता कृषि पशुपालन और व्यापार ये वार्ता विद्या है (कृषिपाशुपाल्य वाणिज्य च) और इन सभी व्यवस्थाओं को व्यवस्थित करने के लिए दण्डनीति नामक विद्या सुशासन-दु:शासन का ज्ञान प्रतिपादित है। कौटिल्य इन चारों को विद्या मानते हैं। मनु आन्वीक्षकी के अतिरिक्त विद्या त्रयी, वार्ता और दण्डनीति है । आचार्या वृहस्पति वार्ता और दण्डनीति को ही विद्या मानते है। शुक्राचार्य एकमात्र दण्डनीति को ही विद्या मानते है। दण्डनीति राजधर्म का विषय है। इसीलिए शांतिपर्व में राजधर्म को सभी धर्मों का सार कहा गया है। **सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः।** [2]

योगक्षेम -

कौटिल्य कहते है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्डनीति पर निर्भर है। दण्डनीति का प्रतिपादन इन्द्रियजयी और विद्यावान् राजा ही कराते थे। दण्डनीति वह विद्या है जिसमें मनु कहते है कि बगुले के समान अर्थ चिन्तन, सिंह के समान पराक्रम, भेड़ियों के समान शत्रुओं का नाश करे और खरगोश के समान शत्रुओं के घेरे से निकाल जाने की कला ज्ञान, अर्थात् समस्याओं का समाधान निकालने की क्षमता । ये विद्या भले राजा के लिए कही गयी पर प्रत्येक छात्र अपने जीवन का राजा होता है क्योकि वह अपने जीवन का निर्माता, निर्देशक होता है इसलिए उसमें अर्थ-चिन्तन-पराक्रम-समस्याओं का नाश तथा समाधान निकालने की क्षमता का विकास करना ही विद्या का और नयी शिक्षा-नीति का भी ध्येय है। इन क्षमताओं के द्वारा ही एक वैज्ञानिक-नैतिक-सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण 'योगक्षेम' को प्राप्त हो सकेगा। नयी शिक्षा-नीति का ध्येय भी यही है । जिसमें छात्र भारतीय ज्ञान की जो परम्परा थी, उसे समकालीन समय में जाने।

भारतीय वैदिक परम्परा का आधार पुरुषार्थ है। इस प्रयोजन की सिद्धि बिना कर्म के संभव नहीं। कर्म जब प्रशिक्षित अनुशासित हो तो वह समाजोपयोगी देशोपयोगी तथा धर्मोपयोगी होगा ही। 'योगक्षेम' कर्म का प्रशिक्षित वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। जिससे वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की उड़ान भरने में उसे सहायक होता है। योगक्षेम शब्द की व्याख्या मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृत्यादि तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। योगक्षेम को समझने के लिए चार चरणों में कर्म का निर्धारित किए गये है।

1. **अप्राप्त की प्राप्ति (अलब्धलाभार्था)।**
2. **प्राप्त वस्तुओ का संरक्षण (लब्धपरिरक्षणी)।**
3. **संरक्षित वस्तुओ की वृद्धि (रक्षितविवर्धनी)।**

1 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.१ /अ.१
2 शांतिपर्व

4. संवर्द्धित वस्तुओ का समुचित कार्यो में लगाना (वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च)। [1]

जिस पर संसार की लोकयात्रा निर्भर है। जिसे कौटिल्य ने अपने रचित ग्रंथ अर्थशास्त्र के विनयाधिकरण में 'योगक्षेम' की संज्ञा दी है। अप्राप्त ज्ञान, अप्राप्त सम्पत्ति, अप्राप्त ध्येय की प्राप्ति के लिए कर्म करना। जीवन का यह प्रथम लक्ष्य होता है।

दूसरा प्रयास प्राप्त ज्ञान-सम्पत्ति-ध्येय-संस्कृति और धर्म का संरक्षण होना चाहिए। प्राप्तज्ञान सम्पत्ति का धर्मयुक्त आचरण द्वारा संरक्षण तथा अपने बच्चों में उन संस्कार का बीजारोपण करना ही संरक्षित ज्ञान-सम्पत्ति-ध्येय-संस्कृति और धर्म की वृद्धि है। तथा संवर्द्धित ज्ञान-सम्पत्ति-ध्येय-संस्कृति और धर्म का समुचित कार्यों में वृद्ध सहयोग तथा उनके अनुभव से लोक कल्याण उपयोग में लगाना। चतुर्थचरण बहुत उपयोगी है। प्राप्तविद्या का उपयोग करना सही दिशा में लोक-कल्याण के लिए हो तथा जिसमें परम्परा और संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन सुरक्षित है । उसे ही योगक्षेम की संज्ञा दी गयी है।

निष्कर्ष-

भारतीय धर्म-दर्शनों में यह संसार मानो रंगमंच है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य को कर्म करने का अवसर मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति विद्या-विनय-इन्द्रिय आदि उपकरणों से सुसज्जित योग्यतानुसार अपना कर्म करता है, अपने जीवन का निर्माता-निर्देशक बनकर वर्तमान और भविष्य सुखमय ही नहीं कराते अपितु लोककल्याण के लिए भी कर्म करने की भावना का विस्तार सांसरिक दुःखों का अंत कर देता है। क्योकि दुख का कारण बंधन, बंधन का कारण अज्ञानता। अज्ञानता का अंत होना ही चाहिए। मनु अज्ञानता के विषय में कहते है कि

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।

अज्ञानता अन्धकार का कारण है जिसमें अज्ञेय अर्थात् किसी वस्तु का ज्ञान न होना, चिह्नरहित, प्रमाणादि तर्को से रहित अविज्ञेय जिसके लक्षण है, जिसके कारण यह संसार सोया हुआ सा प्रतीत होता है। इसलिए अंधकार-बंधन-अज्ञानता को दूर करने के लिए विद्या-विनय-इन्द्रिय और योगक्षेम का सही प्रबंधनकर छात्र-निर्माण होना चाहिए ।

आज की बड़ी समस्या है उत्तरदायित्व की भावना न होना। दूसरी समस्या है, सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण। भारतीय पारम्परिक ज्ञान को इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारतीय व्यक्तित्व को देश के प्रति उत्तरदायी बनाने में सहायक होगा। आज के बच्चे अपने मन और अपनी इच्छा को अधिक महत्व देते है जिसका परिणाम आगे उन्हें सहन करना पड़ता है। क्रिया की प्रतिक्रिया समझकर, कर्म के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नियंत्रित किया जा सकता है। यही योगक्षेम की सफलता होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

१- वाचस्पति गैरोला,कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् चौखम्ब विद्याभवन वाराणसी
२- मनुस्मृति मन्वर्थमुक्तावलीसहित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
३- याज्ञवल्क्य स्मृति, विज्ञानेश्वरप्रणीत 'मिताक्षरा' व्यख्यया 'प्रकाश' डा॰ उमेशचन्द्र पाण्डेय,
४- चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी 221001
4- डाँ. पाण्डुरङ्ग वामन काणे धर्मशास्त्र का इतिहास , -द्वितीय भाग ,अर्जुन चौबे काश्यप ,लखनऊ 1973

1 कौटिलियम् अर्थशास्त्रम् प्र.१ /अ.३

5- एन एल कोली ,लक्ष्मी नाराइन अग्रवाल भारतीय अर्थव्यवस्था , 2020

6- धर्मशास्त्रों में न्यायव्यवस्था का स्वरूप ,शशि कश्यप ,न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन दिल्ली 2001

7- रजनीकान्त पाण्डे,कौटिल्य अर्थशास्त्र में सत्ता एवं राजनीति , राधा पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली